1.3 भारतीय दर्शन (INDIAN PHILOSOPHY)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत ही नहीं, अपितु समस्त संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ 'वेद' ही हैं। भारतीय दर्शन का स्रोत वेद है। वेद कोई दार्शनिक ग्रन्थ नहीं है, वरन् दर्शनों के आधारभूत ग्रन्थ हैं। वेदों ने बाद के भारतीय दर्शनों पर अत्यधिक प्रभाव डाला, जिन्हें आज हम 'षड्दर्शन' कहते हैं- वे सभी वेदों को मानने वाले हैं। कुछ दर्शन वेदों को नहीं मानते। ऐसे दर्शन तीन हैं- चार्वाक, बौद्ध तथा जैन। इस दृष्टि से भी वेदों का महत्व है। अर्थात् भारत में जो चिन्तन हुआ, वह या तो वेदों के समर्थन के लिए या फिर खण्डन के लिए। वस्तुतः पहले 'नास्तिक' शब्द वेदनिन्दक के लिए ही प्रयुक्त होता था, बाद में इसका अर्थ 'अनीश्वरवादी' हो गया। 'नास्तिक' शब्द के पहले अर्थ में केवल चार्वाक, बौद्ध तथा जैन दर्शन 'नास्तिक' हैं और दूसरे अर्थ में मीमांसा और सांख्य भी आते हैं, क्योंकि ये भी ईश्वर को नहीं मानते। एक अन्य अर्थ के अनुसार- 'नास्तिक उसे कहते हैं, जो परलोक में विश्वास नहीं करता है।' इस अर्थ में षड्दर्शन तथा जैन एवं बौद्ध दर्शन भी आस्तिक दर्शन हो जाते हैं और केवल चार्वाक दर्शन आस्तिक है।

'वेद' वास्तव में एक ही है और उसी से चार वेद बन गये हैं, जैसा कि सनत्सुजात के निम्नलिखित कथन से विदित होता है-

''एकस्य वेदास्याज्ञानाद् वेदास्ते बहवः कृताः।''

अर्थात्-अज्ञानवश एक ही वेद के अनेक वेद कर दिये गये हैं।

स्थूल दृष्टि से वेद को 'कर्म-काण्ड' एवं 'ज्ञान काण्ड' में विभक्त किया गया है। 'कर्म-काण्ड' में उपासनाओं का तथा 'ज्ञान-काण्ड' में आध्यात्मिक तत्व का विवेचन है। देवताओं की स्तुतियों में अनेक मंत्र हैं। ऋग्वेद के दशम् मण्डल के 121वें सूक्त में हिरण्यगर्भ की स्तुति की गई है। इस सूक्त से आध्यात्मिक चिन्तन का अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता नीतिशास्त्र का विश्वविख्यात ग्रन्थ है। इसमें भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है। गीता का मुख्य सन्देश 'निष्काम कर्म' है। अर्थात् बिना फल की इच्छा किये हुए कर्म करना चाहिए। आत्मा अजर-अमर है। न तो इसको कोई मार सकता है और न ही यह किसी को मार सकता है। गीता में ज्ञान, भक्ति एवं कर्म-तीनों मार्गों की महिमा बताई गई है। किन्तु निष्काम कर्म को सुगम एवं उत्तम साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। लक्ष्य के रूप में 'मुक्ति' ही स्वीकार्य है।

चार्वाक दर्शन भौतिकवादी दर्शन है। इसके अनुसार जड़-जगत सत्य है और यह वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी- इन चार भौतिक तत्वों से बना है। चेतना की उत्पत्ति भौतिक तत्वों से ही है। आत्मा

शरीरर को ही कहा जाता है। शरीरर के नष्ट होने पर चैतन्य जो भौतिक तत्वों का विशेष है, नष्ट हो जाता है। मृत्यु के बाद कुछ नहीं बचता। परलोक, वेद, ईश्वर आदि को यह दर्शन स्वीकार नहीं करता। इसके अनुसार जब तक जियें सुख से जियें का सिद्धान्त सर्वोत्तम सिद्धान्त है।

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुमान एवं शब्द भी प्रमाण हैं। भौतिक जगत को जैन दार्शनिक भी चार्वाक की भांति वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी-इन्हीं चार तत्वों के मिश्रण से निर्मित मानते हैं। जैन दार्शनिकों के अनुसार चैतन्य की उत्पत्ति जड़-पदार्थो से नहीं हो सकती। जैन दर्शन के अनुसार जितने सजीव शरीरर हैं, उतने ही चैतन्य जीव हैं। प्रत्येक जीव में अनन्त सुख पाने की क्षमता है। मोक्ष-प्राप्ति सर्वथा संभव है। सांसारिक बंधन से छुटकारा पाने के लिए सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र, तीन उपाय बताये गये हैं।

बौद्ध दर्शन - जगत के सभी प्राणियों में एवं सभी दशाओं में दुःख वर्तमान है और इस दुःख का कारण है- क्योंकि कोई भी भौतिक-आध्यात्मिक वस्तु अकारण नहीं है। संसार की सभी वस्तुएं परिवर्तनशील हैं। मरण का कारण जन्म है। जन्म का कारण तृष्णा है और तृष्णा का कारण अज्ञान है। दुःखों के कारण यदि नष्ट हो जायें तो दुःख का भी अन्त हो जायेगा। चौथा सत्य 'दुःख-निवृत्ति' के उपाय के रूप में है।

1.3.1 दर्शन का अर्थ

(i) पश्चिमी परिवेश में दर्शन का अर्थ

दर्शन शब्द संस्कृत के 'दृश' धातु में 'ल्यूट' प्रत्यय लगाकर बनाया गया है। जिसका अर्थ है- 'देखना'। इसका अंग्रेजी शब्द Philosophy है, जिसकी उत्पत्ति दो यूनानी शब्दों से हुई है:- philo जिसका अर्थ है Love और Sophia जिसका अर्थ है व of wisdom इस प्रकार philosophy का अर्थ है- Love of Wisdom (ज्ञान से प्रेम)।

(ii) भारतीय परिवेश में दर्शन का अर्थ

'दर्शन' पद की व्युत्पत्ति दो अर्थ है। पहले, 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्'। इस व्युत्पत्ति के अनुसार संस्कृत में 'दर्शन' का अर्थ होता है-'जिसके द्वारा देखा जाये।' 'दर्शन' शब्द से वे सभी पद्धतियां अपेक्षित हैं, जिनके द्वारा परमार्थ का ज्ञान होता है। 'देखा जाये' इस पद का अर्थ यों तो 'ज्ञान प्राप्त किया जाये' यह भी हो सकता है, फिर भी इस संबंध में यह ध्यान रखना उचित है कि ज्ञान प्राप्त करने के अनेक साधन हैं। जैसे-प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द आदि। लेकिन इन सभी में सबसे प्रसिद्ध और प्रमुख साधन है-प्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष के भी इन्द्रिय-भेद से पांच प्रकार होते हैं, लेकिन इन सभी में जो ज्ञान चक्षु-इन्द्रिय से प्राप्त होता है-जिसे चाक्षुष प्रत्यक्ष कहते हैं-उसकी प्रामाणिकता सर्वोपरि है। शब्द भी एक प्रकार का प्रत्यक्ष है, जिसको आप्त (विश्वसनीय) पुरूषों ने अपनी अविचलित बुद्धि और शुद्ध

अंतःकरण से प्राप्त करके लौकिक जनों के उत्थान हेतु गुरू-शिष्य परम्परा से प्रसारित किया है। प्रायः चार्वाक को छोड़कर जितने भी भारतीय दार्शनिक हैं वे सभी आप्त (विश्वसनीय) वाक्यों की श्रेष्ठ प्रमाणिकता में विश्वास करते हैं। वेद में आस्था रखने वाले शास्त्रकार तो ऐसा मानते ही हैं, किन्तु जैनों एवं बौद्धों के भी अपने-अपने आप्त-वचन अथवा आगम हैं, जिन्हें वे प्रमाण-स्वरूप मानते हैं। इन सबसे प्रत्यक्ष को सर्वोपरि प्रमाण मानने की बात सिद्ध होती है।

दूसरे 'दृश्यते इति दर्शनम्' जो देखा, समझा जाये वह दर्शन है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रामाणिक विषय-ज्ञान दर्शन है। इस प्रकार 'दर्शन' के अर्थ में दोनों व्युत्पत्तिमूलक अर्थ शामिल हैं। संक्षेप में, 'दर्शन' शब्द से भारतीय शास्त्रकारों का तत्वसाक्षात्कार अभीष्ट है। दर्शनशास्त्र में प्रायः उसी साक्षात्कार की कल्पना की जाती है, जिसकी तार्किक विवेचना भी हो सके। दर्शन शास्त्र का इतिहास ही आप्त पुरूषों द्वारा प्रदर्शित तत्व की युक्तिसंगत विवेचना है। इसके वास्तविक अर्थ को तर्क की कसौटी पर कस कर लाने का एक क्रमबद्ध प्रयास है। इस सबसे यह ज्ञात होता है कि दर्शन का अर्थ केवल अर्न्तज्ञान ही नहीं अपितु वे समस्त विचारधारायें हैं जो अंर्तज्ञान से उद्भूत होती हुई भी युक्तियों के आधार पर प्रमाणित की जाती हैं। भारतीय विद्वानों के दर्शन का यही अर्थ अभिमत है।

दर्शन शास्त्र सत्ता संबंधी ज्ञान कराकर मनुष्य का परम कल्याण करता है। यह परम कल्याण ही दर्शन का लक्ष्य है। अब प्रश्न है कि इस परम कल्याण का क्या स्वरूप है ? यद्यपि इस प्रश्न का उत्तर देने में भारतीय दर्शन के आचार्यो में मतभेद हैं, तथापि इन सबमें एक समानता है, जो न केवल वेदपथगामी दार्शनिक सम्प्रदायों की विशेषता है वरन् जैन और बौद्ध-सरीखे अवैदिक सम्प्रदाय दो दार्शनिक विचारकों की भी आधारभूत मान्यता है।

संसार के विषयों से उत्पन्न होने वाले जितने भी सुख हैं, उनमें दुःख किसी न किसी रूप में छिपा रहता है। इसी दुःख की ज्वाला से तप्त होकर दार्शनिकों ने उसकी निवृत्ति के उपायों की खोज की है। जैनों के अर्हतत्व, बौद्धों के निर्माण, नैयायिकों की आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति तथा वेदान्तियों के मोक्ष में दुःख के नाश की कल्पना अन्तर्निहित है। इस प्रकार दुःख का समूल नाश ही भारतीय दर्शन का परम लक्ष्य रहा है। भारतीय दर्शनकारों ने इसी लक्ष्य के साधनभूत अन्यान्य दर्शनों की रचना करके तथा उन्हें अधिकारभेद से मनुष्य की परमार्थसिद्धि में उपयोगी बताकर मनुष्य को परमपद प्राप्त करने का प्रयत्न किया है।

1.3.2 दर्शन की परिभाषाएं (DEFINITIONS OF PHILOSOPHY)

दर्शन क्या है तथा दर्शन के बिना व्यक्ति का जीवन सहज तरीके से नहीं चल सकता, ये बातें दर्शन के अर्थ तत्व से स्पष्ट हो जाती हैं। ''मनुष्य अपने जीवन तथा संसार के विषय में अपनी-अपनी धारणाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करता है। यह बात अधिक से अधिक विचारहीन मनुष्य के विषय में भी सत्य है, बिना दर्शन के जीवन व्यतीत करना असंभव है।'' - हक्सले

(क) पाश्चात्य दार्शनिकों द्वारा दी गई परिभाषाएं:-

1. ''दर्शन ऐसा विज्ञान है, जो चरम तत्व के यथार्थ स्वरूप की जांच करता है।'' - अरस्तू

("Philosophy is the science which investigates the nature of being as it is in itself." - (Aristotle)

2. ''पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान ही दर्शन है।'' – प्लेटो

("Philosophy aims at the knowledge of the eternal nature of things." - Plato)

3. ''ज्ञान का विज्ञान ही दर्शन है।'' – फिक्टे

("Philosophy is the science of knowledge." - Fichte)

4. ''दर्शन विज्ञानों का विज्ञान है।'' - कामटे

("Philosophy is the science of Science." - Comte)

5. ''दर्शनशास्त्र विश्वव्यापी विज्ञान तथा सभी विज्ञानों के संकलन का नाम है।'' – स्पेन्सर

("Philosophy is the synthesis of the science and universal science." - Spencer)

(ख) भारतीय दार्शनिकों एवं शैक्षिक चिन्तकों द्वारा दी गई परिभाषाएं:-

1. ''दर्शन एक ऐसा दीपक है, जो सभी विधाओं को प्रकाशित करता है।''

कौटिल्य के अनुसार-''आन्वीक्षिकी विद्या'' ही दर्शन है।

दर्शन''प्रदीपः सर्व विद्यानानुपायः सर्वकर्मणाम्।

आश्रमः सर्वधर्माणम् शश्वदान्वीक्षिकीमता॥'' - अर्थशास्त्र, कौटिल्य

2. ''दर्शन एक ठोस सिद्धान्त है, न कि अनुमान या कल्पना, इसे व्यवहार में लाकर व्यक्ति निर्धारित लक्ष्य या मार्ग प्रशस्त कर लेता है।'' - डॉ. बलदेव उपाध्याय

3. ''दर्शन के द्वारा प्रत्यक्षीकरण होता है। अर्थात् चाहे जितना ही सूक्ष्म क्यों न हो उसे दर्शन (दिव्य चक्षुओं) से अनुकूल किया जा सकता है।'' - डॉ. उमेश मिश्र

1.4 दर्शन के क्षेत्र/अंग (SCOPE AND PARTS OF PHILOSOPHY)

दर्शन शास्त्र का विषय क्षेत्र बहुत व्यापक है। यह एक ऐसा अध्ययन है, जिसमें अनुकूल सत्य या प्रत्यक्ष अनुभव, लोक-परलोक और आध्यात्म का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। यह ज्ञान, विज्ञान और कला सभी कुछ है। प्राचीन दर्शन में तो साहित्य, कला, धर्म, इतिहास, विज्ञान आदि सभी विषय इसके अंतर्गत आते हैं। दर्शन को निम्न तीन प्रमुख अंगों में विभाजित किया गया है।

1. तत्व मीमांसा (Metaphysics)

2. ज्ञान मीमांसा (Epistemology)

3. मूल्य मीमांसा (Axiology)

तत्व मीमांसा **(Metaphysics)**:- तत्व मीमांसा जिसे हम अंग्रेजी में Metaphysics कहते हैं, यह दो शब्दों का मिश्रण है:- Metaphysic मेटा (Meta) अर्थात (परे Beyond), फिजिक्स (Physics) अर्थात (प्रकृति Nature)।

इस प्रकार तत्व मीमांसा या Metaphysics का अभिप्राय हुआ प्रकृति के परे (What is real)। तत्व मीमांसा सदैव ही इस प्रश्न के प्रत्युत्तर की खोज में लगा रहता है कि इस संसार में वास्तविकता

क्या है अर्थात् तत्व मीमांसा दर्शन शास्त्र की वह शाखा है जो वास्तविकता की प्रकृति की खोज करती है और साथ ही यह इस बात की खोज करती है कि वास्तविकता किन-किन तत्वों का परिणाम है अथवा उसमें कौन-कौन से तत्व समाजित होते हैं। इस वास्तविकता की खोज के लिए तत्व मीमांसा प्रकृति, ईश्वर, मनुष्य, विश्व, शक्ति, ऊर्जा आदि से संबंधित तत्वों की वास्तविकता की खोज करने का प्रयास करती है। तत्व मीमांसा के अंतर्गत ईश्वर के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने इस प्रकार मत को विभाजित किया है:-

1. आस्तिकवाद (Theism),

2. नास्तिकवाद (Atheism),

3. बहुवाद (Poly-Theism),

4. एकवाद (Oneism),

5. द्वैतवाद (Dualism),

6. विश्वद्वेतवाद (Pantheism),

7. ईश्वरवाद (Deism)

2. ज्ञान मीमांसा (Epistemology):- इसे अंग्रेजी में **(Epistemology)** कहते हैं जो दो शब्दों से मिलकर बना है:

Epistemology (एपिसटीम Episteme) (ज्ञान Knowledge) + लॉजी (Logy) (विज्ञान Science)

इस प्रकार ज्ञान मीमांसा, ज्ञान का विज्ञान (Science of Knowledge) है। यह इस प्रश्न की प्रतिउत्तर की खोज करता है कि संसार में सत्य क्या है? (What is True)। इसके अंतर्गत ज्ञान की प्रकृति, सीमाएं, विशेषताएं व उनका प्रादुर्भाव आदि का अध्ययन किया जाता है। इसमें ज्ञान के विभिन्न पहलुओं के संबंध में अध्ययन कर सत्य की खोज का प्रयास किया जाता है। ज्ञान की उत्पत्ति के संबंध में इसमें तीन विद्धान्तों का उदय हुआ है -

1. बुद्धिवाद **(Relationalism)**. इसके प्रवर्तक डेकॉर्ट Descartes) थे। इस विचारधारा के अनुयायियों का मानना है कि ज्ञान-प्राप्ति का एकमात्र साधन बुद्धि है। यथार्थ ज्ञान सार्वभौमिक व अनिवार्य होता है और इसकी खोज बुद्धि द्वारा ही संभव है।

2. अनुभववाद **(Empiricism)** . इसके प्रवर्तक जॉन लॉक (John Lock) थे। इनका कहना है कि ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन अनुभव है। जन्म के समय बालक का मस्तिष्क कोरे कागज के समान होता है। इसमें बुद्धि का कोई स्थान नहीं है। अनुभव प्राप्त करने के दो साधन हैं:-

अ. संवेदना (Sensation

ब. विचार प्रत्यावर्तन (Reflection)

3. आलोचनावाद **(Critical Theory)**. उपरोक्त दोनों की आलोचना के फलस्वरूप प्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट ने इसका प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा कि बुद्धिवाद व अनुभववाद स्वयं में अपूर्ण हैं। इन दोनों के द्वारा स्वीकार किये गये तथ्य तो सही हैं परन्तु दोनों के द्वारा अस्वीकार किये गये तथ्य गलत हैं। हम न तो बुद्धि की सहायता से ज्ञान की व्याख्या कर सकते हैं और न ही अनुभव की सहायता से। हमें इन दोनों के सहयोग की आवश्यकता है। इन दोनों विचारधाराओं का समन्वय करते हुए काण्ट ने ज्ञान के दो पक्ष बताए हैं:-

अ. ज्ञान की विषय वस्तु (Subject-matter of Knowledge)

ब. ज्ञान का रूप (Form of Knowledge)

ज्ञान की विषय-वस्तु को हम सिर्फ अनुभव के द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं व ज्ञान के रूप की यथार्थता हम बुद्धि के द्वारा ही परख सकते हैं।

3. मूल्य मीमांसा **(Axiology)**:- मूल्य मीमांसा जिसे अंग्रेजी में Axiology कहते हैं, दो शब्दों का मिश्रण है:-

Axiology / एक्सिऑस (Axios) (मूल्य Value) + लॉजी (Logy) (विज्ञान Science)

मूल्य मीमांसा के अंतर्गत जीवन के बौद्धिक, नैतिक, सौन्दर्यपरक व आध्यात्मिक मूल्यों की चर्चा की जाती है। इसमें इस प्रश्न के प्रत्युत्तर की खोज की जाती है कि इस संसार में अच्छा क्या है।

मूल्य विषयगत होते हैं। इनकी व्याख्या नहीं की जा सकती है वरन् इनकी अनुभूति की जा सकती है। मूल्य दो प्रकार के होते हैं:- 1. आंतरिक मूल्य (Intrinsic Value) 2. बाह्य मूल्य (Extrinsic Value)। यही मूल्य हमारी विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का निर्धारण व मूल्यांकन करते हैं।

मूल्य शास्त्र को मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किया जाता है:-

1. तर्क शास्त्र

2. नीति शास्त्र

3. सौन्दर्य शास्त्र

1. तर्क शास्त्र - इसके अंतर्गत दर्शन का युक्तिपूर्ण एवं तर्कपूर्ण विवेचन किया जाता है। तर्क शास्त्र के अंतर्गत आगमन-निगमन विधियां अध्ययन के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। इसके अंतर्गत चिंतन, कल्पना, तर्क की पद्धति इत्यादि के बारे में विचार किया जाता है। दर्शन की अध्ययन पद्धति का तर्कशास्त्र एक महत्वपूर्ण अंग है।

2. नीति शास्त्र - इसके अंतर्गत मानव के आचरण की विवेचना की जाती है। साथ ही उन लक्षणों को भी विचारोपरांत निश्चित किया जाता है जो मनुष्य के कर्म-अकर्म, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य और भद्रता-अभद्रता के अनुसार आचरण को आधार प्रदान करते हैं कि मनुष्य का आचरण क्या हो? और उसे कैसा आचरण करना चाहिए?

3. सौन्दर्य शास्त्र - इसके अंतर्गत सौन्दर्य, सौन्दर्य अनुभूति, सौन्दर्य के लक्षण एवं मापदण्ड क्या हैं इत्यादि प्रश्नों से संबंधित समस्याओं का गहन विवेचन किया जाता है।

2.3 शिक्षा और दर्शन के मध्य संबंध (RELATION BETWEEN EDUCATION & PHILOSOPHY)

शिक्षा और दर्शन अन्योन्याश्रित हैं:- शिक्षा और दर्शन दोनों ही एक-दूसरे पर निर्भर हैं। दर्शन शिक्षा को प्रभावित करता है और शिक्षा दार्शनिक दृष्टिकोणों पर नियंत्रण रखती है तथा उसकी कमियों को दूर करती है। दर्शन और शिक्षा दोनों का ही जीवन से घनिष्ठ संबंध है। जीवन को उन्नता बनाने के लिए दोनों की आवश्यकता है। शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में दर्शन अपना योगदान देता है और शिक्षा दर्शन के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देती है, वरना वे कल्पना मात्र ही रह जाते हैं।

फिकटे:- ''दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा के उद्देश्य कभी भी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो सकते हैं।''

1. शैक्षिक सिद्धान्त: दार्शनिक विचारों के व्यावहारिक प्रयोग:- प्रत्येक जीवन दर्शन का एक निश्चित विश्वास पर आधारित होता है। यदि विश्वास जीवन के लिए उपयोगी है, तो उसका शैक्षिक महत्व अवश्य होना चाहिए। अतः दर्शन को शिक्षा से अलग नहीं किया जा सकता। वस्तुतः दोनों में घनिष्ठ संबंध है।

2. दर्शन और शिक्षा-एक दूसरे के दो पहलू:- हार्न के अनुसार शिक्षा के सब तथ्यों को एक साथ रखने से दो बातों का ज्ञान होता है:-

i. शिक्षा वैश्विक प्रक्रिया है।
ii. शिक्षा, सामयिक प्रक्रिया है। ये ऐसी प्रक्रियायें इसलिए हैं, क्योंकि ये व्यक्ति को अपने-जीवन काल को विश्व और समय के अनुसार पूर्ण बनाने का प्रयास करती हैं।

3. शिक्षा के उद्देश्यों पर दर्शन का प्रभाव:- दार्शनिक व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य निर्धारित करते हैं और शिक्षक उस लक्ष्य तक पहुंचने की क्षमता प्रदान करते हैं। प्राचीन शिक्षा, मध्यकालीन शिक्षा और शिक्षक उस लक्ष्य तक पहुंचने की क्षमता प्रदान करते हैं। प्राचीन शिक्षा, मध्यकालीन शिक्षा और वर्तमान शिक्षा के स्वरूप पर दृष्टिपात करने से यह बात और अधिक साफ हो जाती है।

4. शिक्षा के पाठ्यक्रम पर दर्शन का प्रभाव:- पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों को स्थान दिया जाता है जो उन विचारधाराओं के पोषक हों, उन आदर्शों की प्राप्ति, तथा उन आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हों। उदाहरण के लिए भारत में प्राचीन काल में आदर्शवाद और धार्मिक विचारधारा को प्रधानता प्राप्त थी और उसके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नति करना

था, इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम में वेद, उपनिषद आदि धर्मग्रन्थों को प्रमुख स्थान दिया गया था।

5. शिक्षण विधियों पर दर्शन का प्रभाव:- शिक्षण विधियों ही वह माध्यम हैं जिनके द्वारा छात्र और विषय सामग्री के बीच संबंध स्थापित होता है। इसके परिणाम स्वरूप ही छात्रों में उचित दृष्टिकोण का निर्माण होता है और शिक्षा प्रभावकारी होती है। दर्शन, तर्क एवं आलोचना करके शिक्षा विधियों के गुणों, दोषों की खोजबीन करता है और अपना सुझाव प्रस्तुत करता है एवं जीवन लक्ष्य के अनुकूल नूतन शिक्षण विधियों का प्रतिपादन करता है। जैसे-किंडरगार्टेन डाल्टन, मान्टेसरी, प्रोजेक्ट विधियों आदि।

6. शिक्षक पर दर्शन का प्रभाव:- शिक्षा के अनेक अंगों पर उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों, अनुशासन आदि द्वारा दर्शन का बहुत प्रभाव पड़ता है और इनका संचालक शिक्षक ही होता है। अतः उनमें निहित दार्शनिक विचारधाराओं का प्रभाव शिक्षक पर भी पड़ता है। उनके अन्तर्निहित दर्शन को समझे बिना शिक्षक उनका समुचित लाभ नहीं उठा सकता और न ही शिक्षा को प्रभावशाली बना सकता है। इस प्रकार शिक्षण कार्य में दर्शन का अत्यधिक प्रभाव होता है। शिक्षण कार्य में दर्शन शिक्षक को बहुत सहयोग प्रदान करता है।

7. पाठ्यक्रम-पुस्तकों पर दर्शन का प्रभाव:- पुस्तकों का चयन करते समय अथवा पाठ्य-पुस्तकों की रचना करते समय हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उनमें जीवन के आदर्शों, भावनाओं और दार्शनिक विचारधाराओं को प्रधानता दी गई हो। पाठ्य-पुस्तकों के चुनाव एवं रचनाओं में आदर्शों तथा सिद्धान्तों की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी पाठ्यक्रम के निर्धारण में। अतः पाठ्य वस्तु के चुनाव में और पाठ्य पुस्तकों की रचना में समकालीन विचारों एवं आदर्शों को आधार बनाया जाता है।

2.4 शिक्षा दर्शन का अर्थ (MEANING OF EDUCATION PHILOSOPHY)

प्राचीन काल में किसी भी प्रकार के चिन्तन को दर्शन कहा जाता था, परन्तु जैसे-जैसे ज्ञान के क्षेत्र में विकास हुआ, वैसे-वैसे हमने उसे अलग-अलग अनुशासनों (विषयों) में विभाजित करना प्रारम्भ किया। जैसे-मानव शास्त्र, धर्मशास्त्र, चिकित्सा शास्त्र आदि। ज्ञान की उस शाखा को जिसमें अंतिम सत्य (Ultimate Reality) की खोज की जाती है, उसे दर्शन शास्त्र कहा जाता है।

सर जॉन एडम्स (Sir John Adams) का मत है- ''शिक्षा, दर्शन का क्रियात्मक पहलू है। यह दार्शनिक विश्वास का सक्रिय पहलू तथा जीवन के आदर्शों को वास्तविक रूप देने का क्रियात्मक साधन है।'' सामान्यतः शिक्षा वह प्रभाव है, जो किसी प्रबल विश्वास से युक्त व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति पर इस ध्येय से डाला जाता है कि दूसरा व्यक्ति भी उसी विश्वास को ग्रहण कर ले। एडम्स ने शिक्षा-विषयक के अनेक विश्लेषण में अधोलिखित बातें रखी हैं:-

यह प्रक्रिया केवल चेतनशील (Conscious) ही नहीं, वरन् आयोजित (Deliberate) भी है। शिक्षक या गुरू के मन में स्पष्ट रूप से यह आशय होता है कि वह शिष्य के विकास को सुधारे।

1.शिक्षा एक द्विमुखी प्रक्रिया है, जिसमें एक व्यक्तित्व दूसरे व्यक्तित्व के विकास में सुधार करने के लिए उस पर प्रभाव डालता है।

2.शिक्षा के विकास को सुधारने के दो साधन हैं:

(क) शिक्षक के व्यक्तित्व का शिष्य के व्यक्तित्व पर सीधा प्रभाव डालना

(ख) ज्ञान के विभिन्न रूपों का प्रयोग।

शिष्य के स्वभाव में सुधार किस दिशा में होना चाहिए ? सच्ची शिक्षा कौन सी है ? शिक्षक को किन मूल्यों (Values) की दिशा में प्रभाव डालना चाहिए ? आदि मूलभूत प्रश्नों का कोई सर्वमान्य उत्तर नहीं है, क्योंकि शिक्षा संबंधी प्रश्न जीवन के आदर्शों से जुड़े हुए हैं। जब तक ये आदर्श पृथक्-पृथक् हैं, तब तक शिक्षा के इन मूलभूत प्रश्नों का उत्तर भी पृथक्-पृथक् होगा। अतः हम कह सकते हैं कि शिक्षा, दर्शन पर आधारित है और दार्शनिक सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप प्रदान करती है। यहां

यह बात ध्यान देने योग्य है कि जो व्यक्ति वस्तुतः दार्शनिक है, वह स्वभावतः शिक्षाशास्त्री भी बन जाता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि महान दार्शनिक महान शिक्षाशास्त्री भी हुए हैं।

डेन्डरसन के विचार में:- ''शिक्षा-दर्शन, शिक्षा की समस्याओं के अध्ययन में दर्शन का प्रयोग है।''

शिक्षा दर्शन क्या है ? शिक्षा-दर्शन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कर्निघम (Cunningham) ने लिखा है:- '' प्रथम, दर्शन 'सभी वस्तुओं का विज्ञान है', इस प्रकार शिक्षा-दर्शन, शिक्षा की समस्याओं को अपने सभी मुख्य पक्षों में देखता है। द्वितीय, दर्शन सभी वस्तुओं को 'अंतिम तर्कों एवं कारणों के माध्यम से' जानने का विज्ञान है। इसलिए भी, शिक्षा-दर्शन शिक्षा के क्षेत्र में गहनतर समस्याओं का समग्र रूप में अध्ययन करता है और शिक्षा-विज्ञान के लिए उन समस्याओं को अध्ययन के लिए छोड़ देता है, जो तात्कालिक हैं तथा जिनका वैज्ञानिक विधि से सरलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है, उदाहरणार्थ-छात्र-योग्यता के मापन की समस्या।''

2.4.1 दर्शन की परिभाषाएं (DEFFINITIONS OF PHILOSOPHY)

दर्शन की निम्नलिखित परिभाषाएं हैं:-

(1) ''दर्शन अनुभव के विषय में निष्कर्षों का समूह न होकर मूल रूप से अनुभव के प्रति एक दृष्टिकोण या पद्धति है।'' -ब्राइटमैन

(2) ''निष्कर्षों की विशिष्ट अन्तर्वस्तु नहीं बल्कि उन पर पहुंचने की प्रेरणा और विधि ही उन्हें दार्शनिक कहलाने योग्य बनाती है।'' -बेरेट

(3) ''यदि मुझे अपने उत्तर को एक पंक्ति तक सीमित करना है तो मुझे यह कहना चाहिए कि दर्शन समीक्षा का एक सामान्य सिद्धान्त है।'' -डुकासे

(4) ''विज्ञान के समान दर्शन में भी व्यवस्थित चिन्तन के परिणामस्वरूप पहुंचे हुए सिद्धान्त और अर्न्तदृष्टि होते हैं।'' -लेटन

(5) ''दर्शन प्रत्येक वस्तु से संबंधित है, वह एक सार्वभौम विज्ञान है।'' -हरबर्ट स्पेंन्सर

(6) ''दर्शन का कार्य ज्ञान के विभिन्न साधनों द्वारा उपलब्ध सामग्री को, कुछ भी न छोड़ते हुए व्यवस्थित करना और उनको एक सत्य, एक सर्वोच्च, सार्वभौम सद्वस्तु से समुचित संबंध में रखना है।'' -श्री अरविन्द

(7) ''हमारा विषय 'विज्ञानों का संकलन' जैसे कि ज्ञान का सिद्धान्त, तर्कशास्त्र, सृष्टिशास्त्र, नीतिशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र, तथा साथ ही एक समुचित सर्वेक्षण भी है।'' -सैलर्स

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

3.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

प्रत्येक शिक्षक की यह कामना होती है कि वह अपने कार्य में सफलता प्राप्त करे। कार्य में सफलता, कार्य के स्वरूप पर निर्भर रहती है। शिक्षक अपने कार्य में तभी सफल होता है, जब वह

शिक्षण के स्वरूप को ठीक से पहचाने। शिक्षण का स्वरूप शिक्षा-दर्शन निश्चित करता है। अतः शिक्षक के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह शिक्षा-दर्शन से परिचय प्राप्त करे।

साधारणतः प्रत्येक शिक्षक किसी एक विषय का अध्यापन करता है और विशिष्ट विषय का व्याख्याता, प्रवक्ता, प्राध्यापक आदि कहने में वह गर्व का अनुभव करता है। गर्व की अपेक्षा यह चिन्ता का विषय है कि अध्यापक को जीवन का शिक्षक होना चाहिए, न कि किसी विषय का। किसी विषय का पण्डित यदि जीवन की समस्याओं से अपरिचित है तो वह विषय का सच्चा ज्ञाता भी नहीं कहा जा सकता, शिक्षक तो दूर की बात है। शिक्षक का शिक्षकत्व इसी में है कि वह बालक के सम्पूर्ण जीवन के रहस्यों से परिचित हों और जीवन के सन्दर्भ में अपने विषय को सम्पूर्ण ज्ञान की एक शाखा के रूप में ही पढाये। तभी वह सफल शिक्षक हो सकता है, अन्यथा नहीं। जीवन के रहस्यों से एवं अनुभव की एकता से परिचय शिक्षा-दर्शन के अध्ययन से प्राप्त होता है। इसीलिए तो हरबर्ट स्पेन्सर ने कहा है कि ''सच्चा दार्शनिक ही सच्ची शिक्षा को व्यावहारिक बना सकता है।''

शिक्षक का कार्य केवल सैद्धान्तिक समस्याओं एवं उनके समाधान से परिचित होना ही नहीं है, वरन् व्यावहारिक समस्याओं का जानना भी आवश्यक है। शिक्षा-दर्शन व्यावहारिक समस्याओं एवं उनके समाधानों से परिचित कराता है। कुछ शास्त्र केवल तथ्यों का विश्लेषण करते हैं और वे वर्णनात्मक होते हैं। समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि ऐसे ही विज्ञान हैं। किन्तु शिक्षाशास्त्र केवल वर्णनात्मक नहीं है। इसमें मूल्य या महत्व का प्रश्न बड़ा ही महत्वपूर्ण है। अतः यह एक आदर्शात्मक शास्त्र है। शिक्षा-दर्शन में शिक्षा के इसी रूप की व्याख्या की जाती है। अतः शिक्षक को इसका ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

सैद्धान्तिक विषयों में सिद्धान्तों की व्याख्या की जाती है। व्यावहारिक विषयों में आदर्श की स्थापना एवं उस आदर्श को प्राप्त करने के लिए साधनों एवं प्रयत्नों का भी वर्णन होता है। 'शिक्षा' पूर्णतः सैद्धान्तिक विषय नहीं है। शिक्षा का इतिहास शतशः सैद्धान्तिक है किन्तु शिक्षा-दर्शन ऐसा नहीं है। इसीलिए एडलर महोदय शिक्षा की समस्याओं को व्यावहारिक समस्या बताते हैं। शिक्षक को सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार की समस्याओं एवं उनके समाधान से परिचित होना चाहिए। शिक्षा सिद्धान्तों का जनक शिक्षा-दर्शन ही है। शिक्षक के लिए शिक्षा-सिद्धान्तों का जानना आवश्यक है। अतः उसे शिक्षा-दर्शन की जानकारी अवश्य होनी चाहिए।

एक अच्छा शिक्षक अपनी शिक्षण विधि में परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन करता रहता है। कोई भी पद्धति प्रत्येक परिस्थिति के उपयुक्त नहीं हो सकती। यदि ऐसा होता है तो विभिन्न शिक्षण-विधियों का निर्माण न होता। शिक्षण विधियों में परिवर्तन लाने में दर्शन बड़ा सहायक होता है। उद्देश्य के अनुसार विधि में परिवर्तन हो जाता है। शिक्षा-दर्शन से यदि शिक्षक परिचित है तो वह शिक्षण-पद्धति में अभीष्ट परिवर्तन करने में समर्थ हो जाता है। किसी एक शिक्षण-पद्धति का अन्ध भक्त बनना ठीक नहीं है।

3.3 शिक्षक के लिए शिक्षा दर्शन की उपादेयता -

जॉन डीवी के अनुसार, ''शिक्षा-दर्शन बने बनाये विचारों को व्यवहार की एक व्यवस्था पर लागू करना नहीं है, जिसमें पूर्णतया भिन्न उद्गम और प्रयोजन होते हैं। वह तो समकालीन सामाजिक जीवन की समस्याओं के विषय में सही मानसिक और नैतिक अभिवृत्तियों के निर्माण की समस्याओं से सम्बन्धित है। दर्शन की सबसे अधिक व्यापक परिभाषा जो दी जा सकती है, यह है "कि वह अधिकतम सामान्य रूप में शिक्षा का सिद्धान्त है।'' इस प्रकार शिक्षक शिक्षा-दर्शन से शिक्षण सिद्धान्त प्राप्त करता है। शिक्षण प्रणालियों का भी शिक्षक के शिक्षा-दर्शन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

स्पेंन्सर के अनुसार ''केवल एक सच्चा दार्शनिक ही शिक्षा को व्यावहारिक रूप दे सकता है। वह विद्यार्थियों से कैसे व्यवहार करता है और उन्हें अपनी बात कैसे समझाता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि शिक्षार्थी उसके लिए क्या है।''

विभिन्न दार्शनिक व्यवस्थाओं में मानव प्रकृति की भिन्न-भिन्न व्यवस्था की गई है। अस्तु, शिक्षक का शिक्षा-दर्शन शिक्षण प्रणाली के प्रति उसकी अभिवृत्ति निर्धारित करता है। यह ठीक है कि दर्शन

3.3 शिक्षक के लिए शिक्षा दर्शन की उपादेयता -

जॉन डीवी के अनुसार, ''शिक्षा-दर्शन बने बनाये विचारों को व्यवहार की एक व्यवस्था पर लागू करना नहीं है, जिसमें पूर्णतया भिन्न उद्गम और प्रयोजन होते हैं। वह तो समकालीन सामाजिक जीवन की समस्याओं के विषय में सही मानसिक और नैतिक अभिवृत्तियों के निर्माण की समस्याओं से सम्बन्धित है। दर्शन की सबसे अधिक व्यापक परिभाषा जो दी जा सकती है, यह है "कि वह अधिकतम सामान्य रूप में शिक्षा का सिद्धान्त है।'' इस प्रकार शिक्षक शिक्षा-दर्शन से शिक्षण सिद्धान्त प्राप्त करता है। शिक्षण प्रणालियों का भी शिक्षक के शिक्षा-दर्शन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

स्पेंन्सर के अनुसार ''केवल एक सच्चा दार्शनिक ही शिक्षा को व्यावहारिक रूप दे सकता है। वह विद्यार्थियों से कैसे व्यवहार करता है और उन्हें अपनी बात कैसे समझाता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि शिक्षार्थी उसके लिए क्या है।''

विभिन्न दार्शनिक व्यवस्थाओं में मानव प्रकृति की भिन्न-भिन्न व्यवस्था की गई है। अस्तु, शिक्षक का शिक्षा-दर्शन शिक्षण प्रणाली के प्रति उसकी अभिवृत्ति निर्धारित करता है। यह ठीक है कि दर्शन

क विषय के ज्ञान की जगह नहीं ले सकता, किन्तु फिर भी वह शिक्षक के लिए नितान्त
है। बर्ट्रेंड रसल के शब्दों में-''दर्शन शास्त्र का अध्ययन प्रश्नों के सुनिश्चित उत्तर प्राप्त करने
हीं किया जाना चाहिए, बल्कि स्वयं प्रश्नों के लिए किया जाना चाहिए। क्योंकि ये प्रश्न
ओं की हमारी अवधारणा को व्यापक बनाते हैं। हमारी बौद्धिक कल्पना को समृद्ध करते हैं
ादी सुनिश्चितता को कम करते हैं, जो कि कल्पना के विरूद्ध मस्तिष्क को बन्द कर देती है,
र्वोपरि क्योंकि विश्व की महानता जिस पर दर्शन विचार करता है मस्तिष्क को भी महान
से एकीकरण के योग्य बना देती है जो कि उसके सर्वोच्च शुभ का निर्माण करता है।''

के लिए शिक्षा दर्शन का सबसे बड़ा योगदान शिक्षा के लक्ष्यों और आदर्शों को लेकर है।
नि के बिना अध्यापन के कार्य में शिक्षक का कोई प्रयोजन नहीं होगा। चाहे हम वर्तमान
विज्ञान के योगदान की कितनी भी प्रशंसा क्यों न करें, यह कार्य विज्ञान के द्वारा संभव नहीं
में वर्तमान विज्ञान केवल साधन देता है जबकि साध्य दर्शन शास्त्र से मिलते हैं।

शिक्षा दर्शन शिक्षा के पाठ्यक्रम को निर्धारित करने में शिक्षक की सहायता करता है।
की व्याख्या करते हुए प्लेटो ने कहा था- ''वह जो कि प्रत्येक प्रकार के ज्ञान में रूचि रखता
ो कि सीखने के लिए जिज्ञासु हैं और कभी भी संतुष्ट नहीं है, उसे ही दार्शनिक कहना
है।'' दर्शनशास्त्र शिक्षा की परिस्थिति को संपूर्ण रूप में देखता है। उसका दृष्टिकोण सर्वांग
र्ण रूप में देखता है।'' अस्तु, वह सब प्रकार की एकांगिता का सही उपचार है। वर्तमान

शिक्षक के विषय के ज्ञान की जगह नहीं ले सकता, किन्तु फिर भी वह शिक्षक के लिए नितान्त आवश्यक है। बर्ट्रेंड रसल के शब्दों में-''दर्शन शास्त्र का अध्ययन प्रश्नों के सुनिश्चित उत्तर प्राप्त करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि स्वयं प्रश्नों के लिए किया जाना चाहिए। क्योंकि ये प्रश्न संभावनाओं की हमारी अवधारणा को व्यापक बनाते हैं। हमारी बौद्धिक कल्पना को समृद्ध करते हैं और हठवादी सुनिश्चितता को कम करते हैं, जो कि कल्पना के विरूद्ध मस्तिष्क को बन्द कर देती है, बल्कि सर्वोपरि क्योंकि विश्व की महानता जिस पर दर्शन विचार करता है मस्तिष्क को भी महान और विश्व से एकीकरण के योग्य बना देती है जो कि उसके सर्वोच्च शुभ का निर्माण करता है।''

शिक्षक के लिए शिक्षा दर्शन का सबसे बड़ा योगदान शिक्षा के लक्ष्यों और आदर्शों को लेकर है। शिक्षा दर्शन के बिना अध्यापन के कार्य में शिक्षक का कोई प्रयोजन नहीं होगा। चाहे हम वर्तमान शिक्षा में विज्ञान के योगदान की कितनी भी प्रशंसा क्यों न करें, यह कार्य विज्ञान के द्वारा संभव नहीं है। वास्तव में वर्तमान विज्ञान केवल साधन देता है जबकि साध्य दर्शन शास्त्र से मिलते हैं।

शिक्षा दर्शन शिक्षा के पाठ्यक्रम को निर्धारित करने में शिक्षक की सहायता करता है। दार्शनिक की व्याख्या करते हुए प्लेटो ने कहा था- ''वह जो कि प्रत्येक प्रकार के ज्ञान में रूचि रखता है और जो कि सीखने के लिए जिज्ञासु हैं और कभी भी संतुष्ट नहीं है, उसे ही दार्शनिक कहना न्यायोचित है।'' दर्शनशास्त्र शिक्षा की परिस्थिति को संपूर्ण रूप में देखता है। उसका दृष्टिकोण सर्वांग है। वह संपूर्ण रूप में देखता है।'' अस्तु, वह सब प्रकार की एकांगिता का सही उपचार है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में एकांगिता की समस्या की आलोचना करते हुए ए.एम. श्लेजिंगर ने ठीक कहा है- ''हमें अनिवार्य रूप से एक समृद्ध भावात्मक जीवन की आवश्यकता है, जिसमें व्यक्ति और समुदाय में वास्तविक संबंधों की प्रतिछाया हो।''

वर्तमान काल में विश्व में पूर्व और पश्चिम के दो भिन्न दृष्टिकोण दिखलाई पड़ते हैं। ये दो भिन्न सांस्कृतिक दृष्टिकोण, दो भिन्न जीवन दर्शन उपस्थित करते हैं। मानव जाति ने विभिन्न देशकाल में मानव के लिए उपयुक्त जीवन की खोज में अनेक प्रयोग किये हैं। आधुनिक मनुष्य को चाहिए कि वह विभिन्न संस्कृतियों की बुद्धिमताओं का समन्वय करे। आदर्श शिक्षक को पूर्व और पश्चिम, दर्शन और विज्ञान का समन्वय करना चाहिए। प्रौद्योगिकी से भाराक्रान्त जटिल आधुनिक सभ्यता से मानव के बर्बरता की ओर लौट जाने का खतरा उत्पन्न हो गया है। आज मनुष्य को आणविक युग और उद्योगवाद से उत्पन्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। सब कहीं अव्यवस्था और हताशा दिखलाई पड़ती है। सब ओर से समस्याओं के सुलझाव उपस्थित किये जाते हैं। विज्ञान और अन्तर्राष्ट्रीय कानून असहाय दिखलाई पड़ते हैं। ऐसे समय में विचारशील व्यक्ति, धर्म, नैतिकता और आध्यात्मिकता की ओर देख रहे हैं। जैसा कि हाइनीमैन ने कहा है- '' हमारे सामने जो विकल्प है, वह इस प्रकार है: या तो मस्तिष्क की शक्ति समाप्त हो, मानव का पतन हो, उसकी बौद्धिक और आध्यात्मिक क्रिया में गिरावट आये जो कि अधिकाधिक यंत्रवत हो रही हैं और अंत में अत्यधिक

केन्द्रीयकृत नियंत्रण वाले नये तानाशाही प्रशासन की दासता की स्थापना हो, अथवा एक आध्यात्मिक क्रान्ति हो, मानव इस तथ्य की ओर जागे कि अंत में वह असीम आध्यात्मिक शक्तियों वाला एक आध्यात्मिक प्राणी है और अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने और तथाकथित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति को एक जनतंत्रीय व्यवस्था में नैतिक और आध्यात्मिक लक्ष्य के अधीन करने का कठोर निर्णय करे।''

अस्तु, शिक्षक के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता उसका शिक्षा दर्शन है। सांस्कृतिक अथवा किसी भी अन्य प्रकार की एकांगिता का एकमात्र उपचार दार्शनिक दृष्टिकोण है। यह दार्शनिक दृष्टिकोण उसके सर्वांग रूप में श्री अरविन्द के इन शब्दों में उपस्थित किया गया है-''हृदय और मस्तिष्क सार्वभौम देवता हैं और न तो हृदय के बिना मस्तिष्क और न मस्तिष्क के बिना हृदय मानव आदर्श हो सकता है।''

दर्शन शास्त्र की उपादयेता न केवल आदर्शो, लक्ष्यों और पाठ्यक्रम को निर्धारित करने में है बल्कि शिक्षा के व्यवहार के नित्य प्रति के कार्यक्रम में हैं। एडलर के शब्दों में- ''इस प्रकार हम यह देखना शुरू करते हैं कि न केवल शिक्षा दर्शन का विशिष्ट क्षेत्र, प्रश्नों का उत्तर देते हुए विज्ञान द्वारा अनुत्तरीय है बल्कि शिक्षा दर्शन की आवश्यकता है क्योंकि उसके बिना मौलिक व्यवहारिक सिद्धान्तों का निश्चित निर्णय संभव नहीं है जो कि शैक्षिक व्यवहार के नित्य प्रति की नीतियों के अंतर्गत होता है।''

के.एल. श्रीमाली के शब्दों में-''इस प्रकार न केवल शिक्षक को एक शिक्षा-दर्शन रखना चाहिए, उसे अपने विद्यार्थियों में एक जीवन दर्शन विकसित करने के लिए भी तैयार होना चाहिए।' शिक्षक शिक्षार्थियों को जानकारी और ज्ञान प्रदान करता है, किन्तु उसकी व्यक्तिगत छाप उसके जीवन दर्शन के रूप में ही पड़ती है। महान शिक्षकों ने संसार को जानकारी नहीं बल्कि जीवन दर्शन प्रदान किये हैं।

3.2 आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षा दर्शन का महत्व -

'शिक्षा-दर्शन' में 'शिक्षा' और 'दर्शन' दो शब्द मिले हुए हैं, ये दोनों शब्द मानव के जीवन से घनिष्ठ संबंध रखते हैं। ये दोनों अंग एक सिक्के के दो पहलू माने जाते हैं। दर्शन जीवन का विचारात्मक (सैद्धान्तिक) पक्ष है, जबकि शिक्षा क्रियात्मक (व्यावहारिक) पक्ष है। दर्शन जीवन के आदर्शों और मूल्यों को निर्धारित करता है और शिक्षा इन आदर्शों तथा मूल्यों को क्रियात्मक स्वरूप प्रदान करती है। 'शिक्षा-दर्शन' शिक्षा की समस्याओं का हल निकालता है। 'शिक्षा-दर्शन' को दर्शन की एक शाखा के रूप में भी जाना जाता है। यह शिक्षा संबंधी विषयों का दार्शनिक दृष्टिकोण से अध्ययन करती है। कुछ विद्वानों के अनुसार 'शिक्षा-दर्शन' शिक्षा का ही एक अंग है। आधुनिक विचारक 'शिक्षा-दर्शन' को किसी विषय की शाखा के रूप में स्वीकार न करके उसे एक स्वतंत्र विषय मानते हैं। 'शिक्षा-दर्शन' का महत्व शिक्षक के लिए निम्नलिखित कारणों से है:-

1. शिक्षा संबंधी समस्याओं का हल: 'शिक्षा-दर्शन' शिक्षा के क्षेत्र की गहनतर समस्याओं का समग्र रूप से अध्ययन करता है और शिक्षा विज्ञान के लिए उन समस्याओं को अध्ययन हेतु छोड़ देता है, जो तात्कालिक एवं जिनका वैज्ञानिक विधि से सरलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है।

2. शिक्षा का पथ-प्रदर्शन: 'शिक्षा-दर्शन' का कार्य शुद्ध दर्शन द्वारा प्रतिपादित सत्यों एवं सिद्धान्तों को शैक्षिक प्रक्रिया के संचालन में प्रयुक्त करना है। यह दार्शनिक सत्य एवं शिष्य के जीवन एवं आचरण के संबंध में चेतना क्षेत्र में लाने का प्रयास करता है और उनके संबंध को तर्कपूर्ण एवं नियोजित तथा अधिक तात्कालिक एवं प्रभावशाली बनाता है और शिक्षक को बहुमुखी संबधों की स्थापना में पथ-प्रदर्शन करने का प्रयास करता है।

3. शिक्षा प्रक्रिया की स्पष्टता: 'शिक्षा-दर्शन' शिक्षा प्रक्रिया को स्पष्टता प्रदान करता है। लगभग सभी शिक्षाशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि शिक्षा के दार्शनिक आधारों को समझे बिना शिक्षक अंधकारमय मार्ग पर चलता है। दर्शन द्वारा ही शिक्षा प्रक्रिया में सत्यता, स्पष्टता और उपयोगिता का समावेश होता है।

4. शैक्षणिक प्रश्न जीवन दर्शन से संबंधित: वास्तव में प्रत्येक शैक्षणिक प्रश्न जीवन दर्शन से संबंधित है। इन प्रश्नों को समझने के लिए व्यक्तियों के जीवन-दर्शन को समझना आवश्यक है। इस कार्य से दर्शन हमारी सहायता करता है। दर्शन का मुख्य विषय ही जीवन है। दार्शनिक शैक्षिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं। इसीलिए उच्चकोटि के दार्शनिक उच्चकोटि शिक्षाशास्त्री हुए हैं। दार्शनिकों के

दृष्टिकोण उनकी शैक्षिक विचारधाराओं से प्रकट होते हैं। वे शैक्षणिक प्रश्नों को अपनी दार्शनिक विचारधाराओं द्वारा हल करते हैं। स्पेन्सर के अनुसार-''वास्तविक शिक्षा का संचालन वास्तविक दार्शनिक ही कर सकता है।''

5. शिक्षा में प्रयोग के लिए अवसर: 'शिक्षा दर्शन' के अध्ययन की आवश्यकता इसलिए भी है कि शिक्षा-शास्त्र का अध्ययन तभी पूरा होता है जब 'शिक्षा-दर्शन' का अध्ययन किया जाता है। 'शिक्षा-दर्शन' के अध्ययन से शिक्षक शिक्षा की प्रक्रिया को पूर्णतया सफल और उपयोगी बना सकता है। 'शिक्षा-दर्शन' शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग के लिए अवसर प्रदान करता है। दर्शन शिक्षा के प्रयोगों के लिए पथ-प्रदर्शक का कार्य भी करता है, जैसा कि बटलर ने कहा है- ''दैनिक शिक्षा के प्रयोगों के लिए पथ-प्रदर्शक हैं। शिक्षा अनुसंधान के क्षेत्र के रूप में दार्शनिक निर्णय हेतु निश्चित सामग्री का आधार रूप में प्रदान करती है।''

6. शिक्षा और दर्शन अन्योन्याश्रित हैं: दर्शन और शिक्षा दोनों ही एक-दूसरे पर निर्भर हैं। दर्शन शिक्षा को प्रभावितकरता है और शिक्षा दार्शनिक दृष्टिकोणों पर नियंत्रण रखती है तथा उसकी त्रुटियों को दूर करती है। दर्शन और शिक्षा दोनों का ही जीवन से घनिष्ठ संबंध है। जीवन को उन्नतिशील बनाने के लिए दोनों की आवश्यकता हैं शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में दर्शन अपना योगदान देता है और 'शिक्षा-दर्शन' के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देती है अन्यथा वे कल्पना मात्र ही रह जाते। फिफ्टे के अनुसार-

''दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा के उद्देश्य कभी भी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो सकते हैं।''

7. शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण: शिक्षक को शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करने में दर्शन सहायता करता है। दर्शन जीवन के उद्देश्यों को निर्धारित करता है और जीवन के उद्देश्यों के अनुरूप ही शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण होता है। अतः जिस प्रकार का हमारे जीवन का दृष्टिकोण होगा उसी प्रकार के शैक्षिक उद्देश्य निर्धारित किये जायेंगे। उदाहरण के लिए प्राचीन भारत में जीवन का लक्ष्य ईश्वर को प्राप्त करना था। इसीलिए शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिक विकास करना था। इसी तथ्य की पुष्टि जॉन ड्यूबी ने की है- ''दर्शन शिक्षा के साध्यों को निर्धारित करने से संबंधित है।''

8. शिक्षा के सिद्धान्त, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, छात्र, प्रकाशक आदि के आधार पर बनाये जाते हैं। इन सिद्धान्तों की सम्यक जानकारी होना अध्यापक के लिए आवश्यक है। अन्यथा वह सफल नहीं हो सकता।

9. शिक्षण विधियों का निर्माण: शैक्षिक उद्देश्यों और पाठ्यक्रम का निर्माण हो जाने के बाद शिक्षण-विधियों के निर्माण की आवश्यकता होती है। शिक्षण-विधियों का निर्माण करने में 'शिक्षा-दर्शन'' का अध्ययन आवश्यक होता है। शिक्षण विधियों का निर्माण दार्शनिक विचारों के अनुसार ही किया जाता है।